बलवन्तराव हँस दिये, ''बोलचाल में झाँकनेवाली विनम्रता में मिशनरी पुट है, लेकिन मिशनरियों की तरह यह आदमी अपने मुद्दे से विचलित होनेवाला नहीं लगता।''

संकट कभी इक्का-दुक्का नहीं आते। अकाल के बाद महाराष्ट्र में प्लेग ने हाहाकार मचा दिया। पहले इसने बम्बई में अपना रंग दिखाया और उसके बाद शायद ट्रेन के जरिये वह पुणे पहुँच गया। पुणे में प्लेग का मरीज सम्भवतया 1896 के सितम्बर माह में पाया गया। बलवन्तराव ने तुरन्त 6 अक्तूबर के 'केसरी' में इस बात का उल्लेख भी किया।

धीरे-धीरे प्लेग ने पुणे में उग्र रूप धारण कर लिया और शहर में इसका ताण्डव नृत्य शुरू हो गया। 1897 के फरवरी माह में तो यह चरम सीमा पर था। प्रतिदिन सैकड़ों लोग प्लेग का शिकार होने लगे। सैकड़ों लोग चूहे की मौत मरने लगे। ताबूत या गणेशोत्सव के जुलूस की तरह शव-यात्राओं का सिलसिला शुरू हो गया। कुछ दिनों बाद तो शवों को ढोने के लिए आदमी नहीं मिलते थे। प्लेग-पीड़ित मरीजों और घरों से लोग कोसों दूर रहना ही पसन्द करने लगे, मानो वे प्लेग के मरीज नहीं कुष्ठरोगी हों। अन्ततः लकड़ियों के गट्ठर की तरह शवों को सिर पर उठाकर ले जाने की नौबत आ गयी। लावारिस शव कुत्ते-गीदड़ों के लिए यहाँ-वहाँ पड़े रहते।

बच्चों-बूढ़ों से भरे-पूरे परिवार उजड़ने लगे। परिवार के मुखिया की मृत्यु से पूरे परिवार के अनाथ हो जाने की मनहूस घटनाएँ हर गली-नुक्कड़ में होने लगीं। जिन्दगी का भरोसा ही नहीं रहा जैसे। इनसान के चेहरे की हँसी गायब हो गयी। मौत के आतंक से उनकी बोलती बन्द हो गयी। शहर के सारे व्यवहार ठप्प पड़ने लगे। कोई यह नहीं बोल सकता था कि ऊँट किस करवट बैठेगा।

प्लेग की बीमारी पर डॉक्टरी इलाज कुछ था ही नहीं। साफ-सफाई रखना ही उसकी रोकथाम का एकमात्र उपाय था। लेकिन उसमें भी सन्देह बना रहता था। जनता और सरकार दोनों असमंजस में पड़े हुए थे।

पुणेवासी शहर छोड़-छोड़कर जाने लगे। उनकी हिम्मत अब टूट चुकी थी। प्रतिष्ठित और धनी परिवार के लोग तो अपने सभी परिजनों और माल-असबाब के साथ चले भी गये थे।

लेकिन बलवन्तराव शहर में ही डटे रहे। 'केसरी' के जरिये वे जनता को प्लेग के बारे में जानकारी देते रहे, साफ-सफाई रखने का अनुरोध वे जनता से करते रहे। हर गली-कूचे के घर-घर में जाकर लोगों को सान्त्वना दे रहे थे, उनका साहस बँधा रहे थे, मार्गदर्शन कर रहे थे। कसौटी की घड़ी में संगी-साथियों को छोड़कर भाग

खड़े होनेवाले नेताओं की उन्होंने बखिया उधेड़ दी। अपनी ओर से वे हर सम्भव प्रयास कर रहे थे। इस प्रकार अपनी जान जोखिम में डालकर किसी के लिए कुछ करने में बलवन्तराव का कोई सानी नहीं था।

शहर में प्लेग का कहर बरपा होने के बाद सरकार ने ठोस उपाय-योजना शुरू कर दी। शहर में आने-जाने वाले लोगों से बीमारी फैलने के आसार थे। इसे रोकने के लिए जगह-जगह पर चौकियाँ स्थापित कर क्वारण्टीन शुरू किये। मरीजों को जबरन उठाकर सेग्रीगेशन छावनियों में रखा गया ताकि स्वस्थ लोगों पर विपरीत असर न पड़े। प्लेग का शिकार बने परिवारों के कपड़े-लत्ते तथा अन्य चीज-वस्तु बाहर निकालकर उन्हें अग्नि को समर्पित किया जाने लगा। गरीजों को ढूँढ़ निकालने के लिए हर घर की तलाशी ली जाने लगी।

इस काम में सरकार ने मिस्टर रैण्ड नामक अत्यन्त कड़े आदमी को लगा दिया, और उनकी सहायता के लिए सेना के दो अधिकारी भी तैनात कर दिये गये। सेना के ये अधिकारी लोगों के घरों की तलाशी अत्यन्त अशिष्ट तरीके से लेने लगे। पूजा-गृह, रसोई आदि सभी जगह वे जूते पहनकर चले जाते। घरों के सामान की उठा-पटक करने लगे, उसे अस्त-व्यस्त फेंकने लगे, उसे सड़क पर लाकर उसमें आग लगाने लगे। उनके खिलाफ किसी भी तरह की कोई शिकायत सुनने की फुरसत ही किसी के पास नहीं थी। इतनी निरंकुश सत्ता हाथ में आने पर गोरे सेनाधिकारी चोरी करने लगे, डराने-धमकाने लगे, महिलाओं को बेइज्जत करने की ओर प्रवृत्त होने लगे। प्लेग के साथ ही पुणे में रैण्डशाही का आतंक छा गया।

बलवन्तराव ने मूलतया सरकार की उपाय-योजना को समुचित और सार्थक ही बताया। और साफ-सफाई न बरतने की स्वजनों की विशेषता के लिए उन्होंने उन्हें कोसा भी। सरकारी नीति के कार्यान्वयन की पद्धति पर उन्होंने प्रहार भी किये। साथ ही उन्होंने जनता को सचेत किया कि गोरे जवान यदि चोरी, लूट-मार आदि करते हैं तो यह उनका अपराध है। इसलिए उन्होंने कानून का सहारा लेकर इन जवानों को सबक सिखाने का आग्रह जनता से किया। सुधारकों ने भी रैण्डशाही पर कड़वी टीका-टिप्पणी की।

बलवन्तराव केवल उपदेश और टीका तक ही नहीं रुके। वे खुद भी गली-कूचों की खाक छानते रहे और गोरे जवानों की ज्यादतियों को नियन्त्रित करने की कोशिश करते रहे। इसके अलावा, एक हिन्दू अस्पताल की स्थापना कर वहाँ उन्होंने मरीजों की व्यवस्था करवायी।

तथापि रैंडशाही की ज्यादतियों को नियन्त्रित करने में उन्हें कोई विशेष सफलता नहीं मिली। लोग बहुत त्रस्त हो उठे। दो-एक बार गोरे जवानों पर धावा बोलते हुए उन्होंने असन्तोष भी व्यक्त किया, तथापि इस स्थिति को उन्हें मजबूरन

जज्ब करना पड़ा। इसलिए लावा भीतर-ही-भीतर उफनने लगा। गर्म दिमाग के युवक आपे से बाहर हो गये। दामोदर हरि चाफेकर और उसके युवा सहयोगी तो बहुत ही उत्तेजित हो गये। वे रैण्ड की गतिविधियों पर नजर रखने लगे।

गर्मी के मौसम में प्लेग का प्रकोप कुछ ठण्डा पड़ गया। रैण्डशाही का सुलतानी पाश धीरे-धीरे ढीला पड़ता गया। शहर छोड़कर गये हुए लोग लौटने लगे। नेताओं की शक्लें फिर से दिखाई पड़ने लगीं। शहर की गतिविधियाँ फिर से पूर्ववत् होने लगीं। लेकिन दिल को पहुँची हुई चोट का असर भी बाकी था। घाव अभी भी बद्ध रहा था।

12 जून को लकड़ी-पुल के पास वाले विट्ठल मन्दिर में शिवाजी-उत्सव शुरू हुआ। रैण्डशाही के दौरान इसी मन्दिर के सुरक्षा-प्रहरियों से बन्दूकें छीनने का दुस्साहस चाफेकर ने किया था।

प्लेग की महामारी से पिण्ड छूटने के कारण उत्सव कुछ अतिरिक्त हर्षोल्लास के साथ मनाया जा रहा था। लोगों के मन में एक बार फिर उत्साह जगाने के इरादे से बलवन्तराव ने जान-बूझकर इतने बड़े पैमाने पर भव्य रूप से इस उत्सव को मनाने की योजना बनायी थी।

प्रारम्भ में स्तुति-गीत गाये गये। उसके बाद शिवरामपन्त परांजपे ने पुराण की कुछेक घटनाएँ सुनायीं। उन्होंने राजसूय यज्ञ और धृतराष्ट्र-शकुनि-संवाद— महाभारत के इन कथाभागों का निरूपण किया। 'असन्तोषः श्रियो मूलम्' इस मूल सूत्र पर उनका निरूपण आधारित था। कथा महाभारतकालीन थी लेकिन आधुनिक परिवेश से उसका सन्दर्भ वे स्पष्टतया जोड़ते जा रहे थे। अत्यन्त ओजस्वी वाणी में, प्रभावी तरीके से असन्तोष की चिनगारियों को हवा करते रहने तथा उसकी वेदी पर जुल्म ढानेवाले को बलि चढ़ाने तथा राजसूय यज्ञ की एक अनूठे तरीके से प्रासंगिकता का सन्देश वे अपने निरूपण में देने का प्रयास कर रहे थे।

शिवरामपन्त उग्रवादी प्रवृत्ति के थे। हाथ में शस्त्र धारण कर अँगरेजों से लोहा लेने के वे पक्षधर थे। बलवन्तराव के अखाड़े का पहलवान होने के बावजूद वे अब उनसे दो कदम आगे निकल चुके थे। अपनी वक्तृत्व कला से वे हजारों श्रोताओं को रिझाने में सक्षम हो गये थे। अपनी इस क्षमता की मदहोशी मानो उनके अंग-अंग में व्याप्त हो गयी थी।

राजनीति का समीकरण अभी ये लोग नहीं समझ पाये हैं, कहीं-न-कहीं कोई गलती जरूर हुई है, यह तथ्य बलवन्तराव भाँप गये थे। लेकिन ऐसे साहसी देशभक्तों की धज्जियाँ उड़ाने या उन्हें अपमानित करने की इच्छा उन्हें नहीं हो रही थी। साहसिकता के कायल वे भी थे। संघर्ष तो उन्हें अनिवार्य और अटल लग रहा था।

अतिवादी प्रवृत्ति से की गयी गलतियाँ भी राजनीति में सहायक सिद्ध हो सकती हैं, लड़ाई के परिणामस्वरूप पराजय का मुँह ताकना भी कई बार लड़ाई से बचकर प्राप्त सुरक्षिता से अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकता है, यह तथ्य प्रज्ञावान गणितज्ञ बलवन्तराव अच्छी तरह से जानते थे। उन्हें महसूस हो रहा था कि जिन गृहीत तत्त्वों पर आज तक आन्दोलन चलाये, उन्हें एक विशिष्ट आकार दिया और गति प्रदान की, उन गृहीत तत्त्वों को परिवर्तित करना अब आवश्यक हो गया है। आन्दोलनों का ढाँचा भी बदला जाना चाहिए। इसलिए इन उग्रवादी साथियों को नियन्त्रित करने के चक्कर में वे स्वयं अपनी जगह से खिंचते चले जा रहे थे। सन्तुलन बनाये रखने का एक खतरनाक खेल वे खेल रहे थे। इसी क्रम में वे बीच में ही सन्तुलन तोड़कर कूद पड़ने की तैयारी कर रहे थे।

शिवरामपन्त के पुराण-निरूपण में चाफेकर बन्धु और उनके मित्र उपस्थित थे।

रविवार को सुबह विंचूरकर-वाड़ा में मर्दों के खेलों का प्रदर्शन हुआ। वातावरण हर्षोल्लास से सराबोर था।

उसी दिन, रात को अफजलखान-वध विषय पर फर्ग्युसन कॉलेज के प्रो. भानू का व्याख्यान हुआ। इस विषय पर पिछले चार वर्षों से बहस चल रही थी। शिवाजी ने हत्या नहीं की। खान ने पहले आक्रमण किया। इसलिए अपने बचाव में शिवाजी को वह अप्रिय कदम उठाना पड़ा। इस तरह की सफ़ाई प्रो. भानू आदि नयी पीढ़ी के इतिहासकार दे रहे थे।

अध्यक्ष पद पर बलवन्तराव थे। हमेशा की तरह उन्होंने इस सम्बन्ध में मूलगामी और स्पष्ट भूमिका निभायी। उन्होंने कहा, "शिवाजी ने षड्यन्त्र कर खान की हत्या की, अथवा खान के विश्वासघात के जवाब में आत्मरक्षार्थ शिवाजी को यह कदम उठाना पड़ा—इस बात का निर्णय तो ऐतिहासिक सबूतों के आधार पर ही किया जाएगा, लेकिन मुझे लगता है कि किसी भी एक पक्ष की यथार्थता सिद्ध करनेवाला कोई ठोस सबूत शायद ही मिल पाए।

"यदि भविष्य में, शिवाजी ने घात लगाकर खान का वध किया—यह बात सिद्ध हो जाती है तो भी शिवाजी की योग्यता पर कोई आँच नहीं आएगी। नीति या अनीति के दायरे मोटे-मोटे नियमों से निर्धारित नहीं किये जा सकते। रोजमर्रा के व्यवहार में भी झूठ बोलना या चोरी करना हर बार अनैतिक ही नहीं हो सकता। झूठ बोलने से यदि किसी की जान बचती हो तो उस मौके पर असत्य वचन भी नीति-सम्मत है। इसी तरह से अकाल के दौरान अनाज के दाने के लिए मोहताज लोगों को जिन्दा रखने के लिए यदि कोई दामाजीपन्त बादशाह के अनाज के भण्डार लूट लेता है या लुटवा देता है तो उसे सत्कृत्य ही माना जाएगा। नीति या अनीति का निर्धारण बहुत ही सोच-समझकर किया जाना चाहिए। इसीलिए तो नीति-शास्त्र पर बड़े-बड़े पोथे लिखे गये,

बहसें हुईं, फिर भी कोई सर्वसम्मत हल नहीं निकल सका। कम-से-कम इस समस्या पर विद्वानों में सहमति नहीं हो पायी है।

''ये तो रोजमर्रा के व्यवहार की बात है। उसकी तुलना में राजनीति एक अलग मसला है। शिवाजी राज्यकर्ता थे। वे राजनीतिक दाँव-पेंच चलाते थे। स्वजनों को आजादी दिलाने, जुल्म और अन्याय का निवारण करने के लिए वे राज्य की स्थापना करना चाहते थे। विदेशियों ने बन्दूक की नोक पर जुल्म-अन्याय से, विश्वासघात और आपसी फूट के जरिये जो हमसे छीन लिया उसे वे फिर से प्राप्त कराना चाहते थे। उनका इरादा नेक, सर्वश्रेष्ठ, न्यायोचित और निःस्वार्थ था। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वे अपने प्राणों की आहुति देने के लिए भी तैयार थे। ऐसी स्थिति में किये-कराये को सामान्य नीति-नियमों के फीते से नापना अनुचित होगा। भगवान श्रीकृष्ण को भी मौका देखकर नीति-नियमों को ताक पर रखना पड़ा था। फिर भी हम उनकी योग्यता को घटाते नहीं हैं। शिवाजी के कृत्यों को भी इसी नजरिये से आँकना चाहिए। स्वराज्य-स्थापना के लिए हथियार उठाना कानूनन जुर्म होते हुए नैतिक दृष्टि से उसे जुर्म नहीं कहा जा सकता। इसी तरह से अन्याय, जुल्म और जोर-जबरदस्ती से छीनी गयी आजादी वापस प्राप्त करने के लिए लूटमार करनी पड़े, डाका डालना पड़े, किसी की जान भी लेनी पड़े तो वह नैतिक दृष्टि से अनुचित है, ऐसा दोषारोपण हम यकीनन नहीं कर सकते। सन्मार्ग से यदि न्याय मिले तो बेहतर है, लेकिन ऐसा यदि नहीं होता है तो राजनीतिक पुरुषों को अन्य तरीकों पर अमल करने की पूरी छूट होगी। केवल उनके मन में खोट नहीं होनी चाहिए, दिल साफ होना चाहिए, बस। नीति को काँच के घर में बन्द करके नहीं रखा जा सकता। सुष्ट-दुष्ट इनसानों से भरी इस दुनिया में परिस्थिति के अनुसार अच्छे-बुरे दोनों तरीके अपनाने पड़ सकते हैं...''

बलवन्तराव बेबाक शब्दों में अपने विचार व्यक्त किया करते थे, इसलिए सपाटबयानी के बावजूद वे लोगों के दिलों को छू लेते थे। इस सभा में भी इसी के आधार पर वे बाजी मार ले गये थे।

दामोदर हरि चाफेकर इस बैठक में उपस्थित थे। वे बिलकुल उखड़े मूड में थे। रैण्ड ने जनता पर इतने जुल्म ढाये, फिर भी बलवन्तराव जैसे नेता केवल मुँहजोरी से काम लें और शिकायतें करते रहें, चाफेकर को मंजूर नहीं था। वे फुर्ती से आगे बढ़े और अध्यक्ष की अनुमति लेने का बहाना करते हुए शिवाजी पर लिखे गये कवन (गीत) बुलन्द आवाज में गाने लगे—

...होती काय बिशाद वक्रनयने पाही परस्त्री कुणी।
म्यानातून हजार तीक्ष्ण असिका बाहेर येता क्षणी॥

लेकिन अब—

...आता अग्निरथात सन्धी बघुनी हस्ती स्त्रिया ओढती।
षंढानों करिता कसे सहन हे! लावून ध्या दाद ती॥

(परनारी की ओर आँख उठाकर देखने का दुस्साहस करते ही म्यान से हजारों तलवारें लपलपाती हुई निकल आती थीं। लेकिन अब ट्रेनों में भी मौका देखकर औरतों की इज्जत लूट ली जाती है। अरे षंढो! आप यह सब केवल देखते रहोगे! इसका इलाज करना होगा!)

चाफेकर के इस साहसी प्रयास से श्रोता रोमांचित हो उठे और ऊँट किस करवट बैठता है यह देखने के लिए सहमे हुए दिलों से आतुर हो उठे। चाफेकर तो आपे से बाहर हो गये थे। उन्हें शान्त करते हुए बलवन्तराव, बालासाहब नातू आदि के छक्के छूट गये।

सभा समाप्त होने पर बलवन्तराव ने उन्हें गुस्से में कहा, "तुमने बाकी लोगों को तो षंढ कह दिया, लेकिन स्वयं तुम भी तो कवन बनाने से अधिक कुछ नहीं कर पाये। मर्दानगी का कोई काम किया है तुमने?"

बलवन्तराव की इस टिप्पणी से चाफेकर की निगाहें झुक गयीं; फिर भी उसने जवाब दिया, "जल्दी ही आपको इसका सबूत भी मिल जाएगा।"

बलवन्तराव को सन्देह हुआ कि यह युवक जरूर कुछ असाधारण करने की फिराक में है लेकिन उसे नियन्त्रित करना असम्भव था और ऐसा करना बलवन्तराव ने उचित भी नहीं समझा। रैण्ड की ज्यादतियों का मुँह-तोड़ जवाब देना आवश्यक हो गया था।

बलवन्तराव के उस दिन के भाषण का गोषवारा 'जस्टिस' नाम से हस्ताक्षर कर बम्बई के टाइम्स अखबार को भेज दिया। उसमें उसने सवाल किया था कि "क्या यह राजद्रोह नहीं है?" इस पत्र की वजह से बम्बई के अँगरेजी अखबारों में बलवन्तराव के खिलाफ बहुत कुछ छपने लग गया था।

कुछ दिनों बाद हिन्दुस्तान में महारानी विक्टोरिया की ज्युब्ली बड़े ही जोर-शोर से मनायी गयी। पुणे के गणेशखिण्ड इलाके में गवर्नर की कोठी पर भी भव्य समारोह करने की तैयारियाँ चल रही थीं। यह समारोह 22 जून को करना तय हुआ था।

समारोह की पूर्व सन्ध्या को ही चाफेकर ने बाहुली की टंकी पर विक्टोरिया रानी का एक विकृत चित्र टाँग दिया और उसे जूतों की माला पहना दी। इसके अलावा, उस रात उनके साथियों ने रानी के बारे में ऊल-जलूल बातें-छपे पैम्फ्लेट यूरोपीय लोगों के घरों में पहुँचाये। इस वजह से सरकारी अधिकारी बेचैन हो उठे थे। गणेशखिण्ड इलाके में समारोह-स्थल के आसपास बन्दोबस्त को और कड़ा कर दिया गया था।

22 जून की रात को गवर्नर साहब ने गणेशखिण्ड में बहुत बड़ी दावत दी। इस मौके पर विभिन्न तरह के पटाखों के मनोहर दृश्यों ने भी अँधेरी रात की शोभा बढ़ायी। यह नजारा देखने के लिए अपार जन-समुदाय उमड़ पड़ा था। कोठी के अहाते में, पेड़ों तले, मुँडेरों पर लोग खचाखच भरे थे। बकला-पुआल इकट्ठा करके वे उसकी आग ताप रहे थे। कुछ अपने घर से लायी रोटियाँ खा रहे थे तो कुछ पटाखे छोड़कर कोठी में मनाये जा रहे जश्न में शामिल हो रहे थे। लोग तो खुशी के ऐसे मौकों की तलाश में ही रहते हैं। मौका शिवाजी-उत्सव का हो या महारानी विक्टोरिया के ज्युब्ली समारोह का, उनके लिए कोई फर्क नहीं पड़ता है।

उत्सवप्रिय लोगों के इस हुजूम से कुछ ही दूर, सड़क के किनारे खड़े थे दामोदर बालकृष्ण चाफेकर बन्धु और रानडे एवं आप्टे नामक उनके साथी। हाथ में पिस्तौलें लेकर वे अपने आपको छिपाते हुए मौके का इन्तजार कर रहे थे। चाफेकर का सबसे छोटा भाई वासुदेव गवर्नमेण्ट हाउस के दरवाजे के पास निगरानी कर रहा था। रैण्ड की गाड़ी दिखाई पड़ते ही 'गोंद्या आला रे आला' कहकर चिल्लाते हुए संकेत देना तय हो गया था।

रात बारह बजकर दस मिनट बाद, दावत से निपटकर आमन्त्रित अपने-अपने घरों के लिए चल पड़े। कुछ देर बाद रैण्ड की गाड़ी-जैसी ही एक गाड़ी चल पड़ी। उसमें लेफ्टिनेण्ट आयर्स्ट और उसकी पत्नी थे। गाड़ी की छप्पर उतारकर वे चारों तरफ का नजारा देख रहे थे। गाड़ी गेट से बाहर आयी तो उन्होंने एक ब्राह्मण युवक को ताँगे में सोते हुए पाया। हर्षोल्लास के इस मौके पर उस युवक का सो जाना आयर्स्ट को बड़ा ही अटपटा लगा। लेकिन उसने इस बात को महत्त्वपूर्ण नहीं माना।

इसके कुछ देर बाद रैण्ड अपनी बग्घी में बैठकर गवर्नमेण्ट हाउस से चल पड़े। बग्घी में बैठते समय ही उन्होंने अपने एक दोस्त से कहा भी, "कार्यक्रम तो शान्तिपूर्वक सम्पन्न हुआ। बिना नाम की धमकी भरी चिट्ठियाँ तो महज एक शोशा थीं। मेरी जान को खतरा बता रहे थे। लेकिन कुछ भी तो नहीं हुआ।" हिकारत भरी हँसी के साथ ही वे उसमें बैठ गये।

रैण्ड की बग्घी ज्यों ही चल पड़ी, वासुदेवराय चिल्लाये, "गोंद्या आला रे आला!" इस सांकेतिक वाक्य की ओर वहाँ के शोर-शराबे के बीच किसी का ध्यान नहीं गया। लेकिन घात लगाये बैठे चारों युवक उसका अर्थ बराबर समझ गये। अब वे पूरी तरह से सतर्क और सावधान थे।

इसी बीच रैण्ड की बग्घी-सी लगनेवाली, आयर्स्ट की बग्घी उन चारों के पास से गुजरने लगी। पटाखों की वजह से बग्घी का घोड़ा बिदक रहा था। और श्रीमती आयर्स्ट अपने पति से कह रही थीं, "छी! छी! ये गँवार लोग बिना लाग-लपट के पटाखे छोड़कर घोड़े को बिदका रहे हैं। शर्म भी नहीं आती मुँहजलों को।"

इसी बीच शस्त्र चलाने के लिए अगतिक बना बालकृष्ण गतिशील गाड़ी के पीछे चढ़ गया। गाड़ी के पीछे, गिराये गये छत से टेक लगाकर बैठे आयर्स्ट के माथे से पिस्तौल भिड़ाकर उसने टाइगर दबा दिया।

श्रीमती आयर्स्ट को लगा कि बग्घी के पास ही पटाखे की आवाज हुई है और अपने पति को उसकी चपेट में आते देखकर वह पटाखे छोड़नेवालों को जोर-जोर से कोसने लगी, बुरा-भला कहने लगी।

इतने में आयर्स्ट के मुँह से निकल पड़ा, "आई ॲम शॉट!" और वह बग्घी में ही लुढ़क गये।

श्रीमती आयर्स्ट ने तुरन्त उनका सिर अपनी गोद में उठा लिया। वह छिन्न-विच्छिन्न और लहू-लुहान हो रहा था। उन्होंने कोचवान को आदेश दिया, "रोक दो गाड़ी, जल्दी रोको।" वह भी माजरा समझ नहीं पाया। इसलिए श्रीमती आयर्स्ट बग्घी में खड़ी होकर चिल्लाने लगीं, "रोको, जल्दी रोको। हेल्प! हेल्प!" लेकिन बग्घी उसी तेजी से दौड़ती रही।

अभियान सफल होने की खुशी में बालकृष्ण नीचे उतर गया, तो उसे फिर से 'गोंद्या आला रे आला' यह सांकेतिक वाक्य सुनाई पड़ा। उसके बाद एक विशिष्ट अन्तराल से वह सुनाई पड़ता रहा।

चारों समझ गये कि कहीं कोई गड़बड़ हुई है। इसलिए वे फिर से निशाना साधकर बैठे रहे। इतने में रैण्ड की बग्घी उनके करीब आ गयी। वासुदेव उसके पीछे-पीछे दौड़ रहा था। अबकी बार दामोदर आगे बढ़ा। उसने वासुदेव से कहा, "रुको! रुको!" इसी के साथ वासुदेव ठिठक गया। उसके बाद दामोदर बड़ी फुर्ती से रैण्ड की बग्घी के पीछे चढ़कर खड़ा हो गया। रैण्ड आराम से टेक लगाकर बैठे थे। दामोदर चाफेकर ने उनकी पीठ से पिस्तौल भिड़ाकर गोलियाँ चला दीं। गोलियाँ पीठ के आर-पार चली गयीं और उनका बायाँ फेफड़ा क्षत-विक्षत हो गया। वे भी गाड़ी में ही लुढ़क गये।

दामोदर खुश होकर नीचे उतर आये। उसके बाद चाफेकर बन्धु और उनके साथी पड़ोस के ही एक खेत में से होते हुए शहर में लौट आये।

दूसरे दिन सवेरे दामोदर के मित्र साठे बलवन्तराव के घर गये और उन्होंने सन्देशा दिया, "गणेशखिण्ड का गणपति प्रसन्न हो उठा।"

बलवन्तराव पलभर ठिठक गये। फिर उन्होंने कहा, "बहुत खूब! बढ़िया हो गया। लेकिन अब सावधानी बरतो।"

उन्होंने तुरन्त वासू काका को बुलाया और चाफेकर बन्धुओं की हर सम्भव सहायता करने का आदेश दिया। वासू काका ने भी भारी खतरा मोल लेते हुए चाफेकर बन्धुओं की सहायता की।

रैण्ड-हत्या के कारण अँगरेजों का बौखलाना और उत्तेजित होना स्वाभाविक था। इस घटना से उन्हें एक गहरा सदमा पहुँचा। और फिर, महारानी के हीरक-महोत्सव के दिन ही इस मनहूस घटना के हो जाने से उन्हें इसमें साजिश की बू आने लगी। अँगरेजों को लग रहा था कि पुणे के सिरचढ़े आन्दोलक ब्राह्मणों ने ही गहरी साजिश कर यह हत्या की या करवायी होगी। उन्हें सभी पर शक होने लगा। नरम और सरकार-निष्ठ लोगों की मिली-भगत से भी यह साजिश बनी हो सकती थी। उन्हें तो लगभग यकीन हो गया था कि बलवन्तराव ही इस साजिश के सूत्रधार रहे होंगे।

बम्बई के अँगरेजी अखबारों ने हल्ला मचा दिया। राजद्रोही आन्दोलन और भाषण करनेवालों पर मुकदमे चलाने का आग्रह वे करने लगे। सरकार ने भी इस पूरी साजिश की गहरी छानबीन करने का दृढ़ निश्चय कर लिया। पुणे में सैकड़ों पुलिस और सेना के जवान आ गये। जगह-जगह चौकियाँ बनायी गयीं। पुणे यानी सेना के कब्जे में गये दुश्मन के नगर का रूप प्राप्त हो गया था। लोगों की तलाशियाँ ली जाने लगीं। किसी भी व्यक्ति को सन्दिग्ध करार देकर पूछताछ के लिए पुलिस चौकी में ले जाया जाने लगा। लोग भय के मारे आतंकित हो गये। उन्हें लगने लगा कि कोई नया ही दमनकारी चक्र जरूर शुरू होगा। कोई दिन अमनचैन से गुजर जाए तो बेहतर है।

मौका देखकर लोग सच्ची-झूठी खबरें पुलिस वालों को देकर अपनी पुरानी निजी दुश्मनी का बदला लेने लगे। ऐसी स्थिति में भी श्रीधर विट्ठल दाते को एक क्रूर मजाक सूझा। अपने घर में मौजूद दो ब्राह्मण-पुत्रों के नाम उन्होंने पुलिस वालों को देकर कहा कि वे दोनों युवक हत्या के बारे में कुछ बातचीत कर रहे थे। पुलिस ने तुरन्त उन दोनों को गिरफ्तार कर लिया। इस प्रकार दो निरपराध युवक पुलिस के जाल में फँस गये। इससे उन दोनों के परिजन चिन्तित हो उठे। उन्हें पुलिस के चंगुल से मुक्त कराने में उनके परिजनों को एड़ी-चोटी का जोर लगाना पड़ा।

दमन, आतंक और सन्देहों के घेरे में केवल एक व्यक्ति हिम्मत बाँधकर खड़ा था—बलवन्तराव तिलक। उन्होंने 6 जुलाई के 'केसरी' में 'सरकार का दिमाग तो ठिकाने पर है?' शीर्षक से सम्पादकीय लिखा। उसमें उन्होंने कहा, "पागल हाथी जिस तरह निरंकुश होकर हाय-तोबा मचाता है, उसी तरह से हमारी सरकार भी बौखला गयी है। खून की खुमारी खूनी को चढ़ने के बजाय सरकार को चढ़ गयी, लगता है। इससे सरकार का नजरिया ही एकदम बदल गया है।"

इस सम्पादकीय को पढ़कर उनके साथी घबरा गये। उनमें से कुछेक तो सरकारी सेवा में थे। उन्हीं में से एक साथी ने बलवन्तराव से मिलकर कहा, "बलवन्तराव, सरकार अब आपको गिरफ्तार करेगी, लगता है।"

बलवन्तराव ने हँसकर कहा, "लगता है नहीं, अनिवार्यतया करेगी।"

जवाब सुनकर उनका साथी हक्का-बक्का रह गया; फिर भी उसने अपना तर्क बलवन्तराव के सामने रखा, ''यह बात तो निर्विवाद है कि हत्या से आपका कोई सम्बन्ध नहीं। तो फिर जेल की हवा यूँ ही खाएँगे आप?''

''मैं कहाँ खा रहा हूँ जेल की हवा...मैं तो न्यायालय में यही कहूँगा कि मैं बेकसूर हूँ। फिर भी यदि सरकार किसी-न-किसी बहाने मुझे जेल भेजने पर तुली हुई हो तो भला मैं क्या कर सकूँगा।''

''लेकिन सरकार को मौका ही क्यों दिया जाय? आप 'केसरी' में हत्या निषेध कर अपनी राजनिष्ठा जताइए।'' उनके साथी ने नेक सलाह दी।

बलवन्तराव ने अत्यन्त सन्तुलित ढंग से जवाब दिया, ''किसी भी रूप से सम्बन्धित न होने के बावजूद निषेध करने से सन्देह को बल मिल जाता है। अपराध के लिए अपराधी जिम्मेदार है। आधुनिक कानून तो यही कहता है कि इसके लिए पूरे समाज को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। इसीलिए समाज को या मुझ-जैसे तीसरे व्यक्ति को इस अपराध का निषेध करने की कोई आवश्यकता नहीं। न हमारा वह दायित्व है, न किसी को उसकी जानकारी ही है। न्यायालय ने अभी इस घटना को अपराध करार नहीं दिया है। ऐसी स्थिति में हम यदि न्यायालय की भूमिका करने लगें तो यह सर्वथा अनुचित होगा। और निषेध ही यदि करना हो तो केवल हत्या का निषेध करने से काम नहीं चलेगा। और भी बहुत-सी ऐसी बातें हैं...''

वह साथी निरुत्तर हो गया। अत्यन्त मायूस होकर उसने कहा, ''कम-से-कम सरकार के खिलाफ इस कदर तीखी टिप्पणियाँ तो मत कीजिए।''

''मैं यूँ ही तो नहीं करता टिप्पणी? सरकार लोगों पर जुल्म ढा रही है। अतएव मुँह सिलकर अन्याय को सहन करने के बजाय लोगों को चाहिए कि वे डटकर इसका मुकाबला करें और अपने कानूनी अधिकारों की रक्षा करें। उन्हें चुप तो नहीं रहना चाहिए।'' बलवन्तराव शान्ति से अपनी भूमिका का समर्थन कर रहे थे।

हताश होकर उस साथी ने पूछा, ''यानी कि आप जेल जाने पर तुले हुए हैं?''

''मैं तो लोगों को यह सिखाना चाहता हूँ कि अपने अधिकारों के लिए बड़ी हिम्मत से लड़ना चाहिए। हाथ-पर-हाथ धरे नहीं बैठे रहना चाहिए। अब मेरी जिन्दगी का मकसद ही यही है। इस मकसद को हासिल करने के लिए यदि मुझे जेल जाना पड़े तो उसके लिए भी मैं तैयार हूँ। इसके बाद तो ऐसे कई मौके आएँगे। उस समय मुझे देखकर यदि कई अन्य लोग जेल जाने के लिए तैयार हो सकें तो मैं समझूँगा कि मेरी जेल-यात्रा सार्थक रही। इसलिए आप मेरी बिलकुल चिन्ता मत कीजिए। जेल से मैं नहीं डरता।'' बलवन्तराव के चेहरे पर असाधारण जीवटता और आत्मविश्वास का भाव था।

इसके बाद आगे की बातचीत ठप्प हो गयी। वह साथी मायूस होकर वहाँ से